

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 13: सांसारिक अस्तित्व का वन

22 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



अपने माल से लदा और लाभ की लालसा से प्रेरित वणिक-जीवों का एक विशाल दल, सांसारिक अस्तित्व के अपार, अगम वन में भटक जाता है — और उसकी समस्त छायाओं में कहीं भी उन्हें वह सुख नहीं मिलता जिसे वे खोजते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

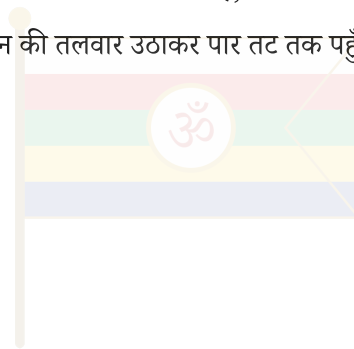
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्जम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। मार्ग के किनारे बैठे, मौन ऋषि जड़ भरत राजा रूहण के लिए समस्त शास्त्र के सबसे मर्मस्पर्शी दृष्टान्तों में से एक खोलते हैं — हमारे सम्पूर्ण सांसारिक भटकाव को एक विशाल वन के रूप में चित्रित करते हुए, और जीव को एक खोए हुए वणिक के रूप में जो धन की खोज में उसमें प्रवेश करता है

और केवल काँटे, मृगतृष्णा और शोक ही पाता है। ऋषि जो भी दृश्य चित्रित करते हैं वह एक दर्पण है; और जब अन्ततः वे राजा की आँखों के सामने ज्ञान की तलवार उठाते हैं, तब दृष्टान्त कृपा में बदल जाता है, और रहूगण का प्रत्येक सन्देह उनके चरणों की धूल में विलीन हो जाता है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 13 (त्रयोदश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: सांसारिक अस्तित्व का वन
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए; कथा के भीतर, जड़ भरत — “ब्राह्मण” — राजा रहूगण से बोलते हैं, जो बदले में उत्तर देते हैं, और राजा परीक्षित एक प्रश्न से समापन करते हैं
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: वह मार्ग-तट जहाँ राजा रहूगण, अपनी पालकी से उतरकर, ऋषि जड़ भरत के चरणों में बैठते हैं
- केन्द्रीय विषय: जड़ भरत का वह दृष्टान्त जिसमें सांसारिक अस्तित्व एक घने वन के रूप में चित्रित है, जिसमें वणिक-जीवों का एक दल भटकता है, डाकुओं, मृगतृष्णाओं, हिंसक पशुओं और अग्नि से पीड़ित; ज्ञान की तलवार उठाकर पार तट तक पहुँचने का उपदेश; और राजा रहूगण के सन्देहों का समाधान
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 13, श्लोक 1-26
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पिछले अध्याय से

बारहवें अध्याय में, राजा रहूगण — विनम्र और जागृत — अपने राजकीय अभिमान को त्यागकर, हाथ जोड़कर ऋषि से अपने प्रश्न पूछते हैं। जड़ भरत ने उन्हें कोमलता से उस आत्मा के विषय में उत्तर दिया जो देह से पूर्णतया पृथक् है, सांसारिक पद की रिक्तता के विषय में, और उस एक निश्चित मार्ग के विषय में जो भगवान् के महान् भक्तों के चरणों की धूल से स्पर्शित जीव के लिए खुलता है। अपने ही पूर्व जन्मों का स्मरण करते हुए, ऋषि ने राजा को दिखाया कि सच्ची आत्मा उस सबसे कितनी दूर है जो भाग्य देता या लेता है। इसी कोमल, खोजी हृदय से ऋषि अब पुनः बोलते हैं, वन का महान् दृष्टान्त खोलते हुए।

वन में वणिकों के रूप में जीव

अपना उपदेश पुनः आरम्भ करते हुए, ऋषि ने एक ऐसा चित्र बनाना शुरू किया जिसे राजा अपने हृदय में धारण कर सके। कल्पना कीजिए, उन्होंने कहा, वणिकों का एक दल जिसे माया ने — भगवान् की अनादि मोहिनी शक्ति ने — एक लम्बे और कठिन मार्ग पर लगा दिया है, ऐसा मार्ग जिसका अन्तिम छोर तक पहुँचना अत्यन्त दुष्कर है। सत्त्व, रज और तम — इन तीन गुणों से विभाजित दृष्टि लिए, और केवल लाभ का ही विचार करते हुए, ये वणिक सांसारिक अस्तित्व के एक विशाल वन में आगे बढ़ते हैं; और उसके किसी भी विस्तार में उन्हें कोई स्थायी सुख नहीं मिलता।

ब्राह्मण उवाच

दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितो

रजस्तमःसत्त्वविभक्तकर्मदृक् ।

स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन्

भवाटवीं याति न शर्म विन्दति ॥ १ ॥

brāhmaṇa uvāca duratyaye 'dhvany ajayā niveśito rajas-tamaḥ-sattva-vibhakta-karmadṛk sa eṣa sārtho 'rtha-paraḥ paribhraman bhavāṭavīm yāti na śarma vindati

अर्थ: ब्राह्मण ने कहा: अनादि माया द्वारा एक अत्यन्त दुर्गम मार्ग पर लगाया गया, अपने कर्मों को रज, तम और सत्त्व के गुणों से विभाजित देखता हुआ, और केवल लाभ में लगा हुआ, यह वणिक-जीवों का दल सांसारिक अस्तित्व के वन में भटक जाता है और वहाँ कोई सुख नहीं पाता। (स्कन्ध 5, अध्याय 13, श्लोक 1)

उस वन में, ऋषि ने आगे कहा, छह डाकू घात लगाए बैठे हैं, जो एक अयोग्य नायक के नेतृत्व वाले इस दल पर टूट पड़ते हैं और यात्रियों से उनका सब कुछ लूट लेते हैं। और जब कोई सदस्य असावधानी से भटक जाता है, तब गीदड़ चुपके से आकर उसे घसीट ले जाते हैं, जैसे भेड़िये झुण्ड से बिछड़ी भेड़ को उठा ले जाते हैं।



एक अयोग्य नायक द्वारा भटकाया गया वणिक-दल छह घात लगाए डाकूओं से घिर जाता है जो उनका माल लूट लेते हैं, जबकि वन के छोर पर एक गीदड़ किसी असावधान बिछड़े को घसीट ले जाता है (श्लोक 1-2)।

मृगतृष्णा, गन्धर्वनगर और छलावे को लपटें

यात्री आगे बढ़ते जाते हैं, और वन उत्तरोत्तर अधिक भ्रामक होता जाता है। लताओं और झाड़ियों से घने झुरमुट में क्रूर डंक मारते डाँस और मच्छरों से पीड़ित, वे आँख उठाकर आकाश में एक चमकता नगर देखते हैं जो वहाँ है ही नहीं — गन्धर्वों का एक मायावी नगर; और अन्यत्र एक क्षणभंगुर, टिमटिमाता आकार, घूमती हुई अग्नि-मशाल-सा, जो नाम रखने से पहले ही लुप्त हो जाता है।

प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरे

कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः ।

क्वचित्तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति

क्वचित्क्वचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम् ॥ ३ ॥

prabhūta-vīrut-tr̥ṇa-gulma-gahvare kaṭhora-daṁśair maśakair upadrutaḥ kvacit tu gandharva-puraṁ prapaśyati kvacit kvacic cāśu-rayolmuka-graham

अर्थ: लताओं, घास और झाड़ियों से घने झुरमुट में क्रूर डाँस और मच्छरों से पीड़ित, वह यहाँ आकाश में गन्धर्वों का एक मायावी नगर देखता है, और वहाँ, बार-बार, घूमती अग्नि-मशाल-सी एक क्षणभंगुर छलावे की लपट। (स्कन्ध 5, अध्याय 13, श्लोक 3)

घर, जल और धन को अपना मानकर, वे इधर-उधर दौड़ते हैं, कभी बवण्डर की उड़ती धूल से इतने अन्धे कि एक दिशा को दूसरी से नहीं पहचान पाते। प्यास से व्याकुल, वे मृगतृष्णा के पीछे दौड़ते हैं और उन धाराओं की ओर बढ़ते हैं जिनमें जल है ही नहीं; भूखे होकर वे एक-दूसरे से भोजन माँगते हैं; कहीं दावानल उन्हें झुलसा देता है, तो कहीं वे निराशा में डूब जाते हैं, भयंकर यक्षों द्वारा मारे जाने को उद्यत। बलवान् पुरुषों द्वारा अपने धन से वंचित होकर, वे शोक करते और मूर्च्छित हो जाते हैं — और फिर, किसी नए मायावी नगर में जा घुसकर, वे एक घड़ी भर ऐसे प्रसन्न होते हैं मानो अन्ततः सुख पा लिया हो।



डंक मारते कीटों से पीड़ित, ये पथिक आकाश में झिलमिलाते मायावी नगर की ओर ताकते हैं और सूखे वन-तल पर मृगतृष्णा के पीछे दौड़ते हैं, प्रत्येक छलावे को वही धन और आश्रय समझते हुए जिसकी वे लालसा करते हैं (श्लोक 3-9)।

मधु की खोज और लाभ का छिन जाना

फिर भी वे संघर्ष करते रहते हैं। किसी पहाड़ी पर चढ़ने की लालसा में वे निकल पड़ते हैं, किन्तु उनके पैर काँटों से बिंध जाते हैं और वे हताश होकर बैठ जाते हैं; एक ऐसे परिवार के भार से दबे जिसका वे पालन नहीं कर सकते, और भूख से कुतरे हुए, वे अपने ही लोगों पर क्रोध करने लगते हैं। एक अजगर किसी को निगल लेता है और वह अचेत पड़ा रहता है; दूसरा, विषैले प्राणियों से डसा हुआ, एक ढके, छलावे-भरे कुएँ में गिर पड़ता है और अन्धकार में पड़ा रहता है, अपनी दृष्टि से वंचित। और कभी-कभी, मधु की छोटी-छोटी बूँदों की खोज में, वे उन्हीं मधुमक्खियों से डसे और पीड़ित होते हैं जो उसे संचित करती हैं; और यदि बड़े कष्ट से वे थोड़ी मिठास पा भी लें, तो अन्य लोग उसे बलपूर्वक लूट लेते हैं, और शेष जो बचता है उसे और भी दूसरे झपट ले जाते हैं।

कर्हि स्म चित्क्षुद्ररसान् विचिन्वं-

स्तन्मक्षिकाभिव्यथितो विमानः ।

तत्रातिकृच्छ्रात्प्रतिलब्धमानो

बलाद्विलुम्पन्त्यथ तं ततोऽन्ये ॥ १० ॥

karhi sma cit kṣudra-rasān vicinvaṁs tan-makṣikābhir vyathito vimānaḥ tatrāti-kṛcchrāt pratilabdhamāno balād vilumpanty atha taṁ tato 'nye

अर्थ: कभी-कभी, मिठास की छोटी-छोटी बूँदें बटोरते हुए, वह उन मधुमक्खियों से डसा और पीड़ित होता है जो उसकी रक्षा करती हैं; और यदि बड़े कष्ट से वह थोड़ी पा भी ले, तो अन्य उसे बलपूर्वक लूट लेते हैं, और और भी दूसरे उसे झपट ले जाते हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 13, श्लोक 10)

अन्य समय वे शीत, धूप, वायु और वर्षा से कोई आश्रय नहीं पाते और असहाय बैठ जाते हैं; अन्यत्र वे अपनी थोड़ी-सी वस्तुओं का लेन-देन करते हैं और, केवल लोभ के कारण, एक-दूसरे को शत्रु बना लेते हैं। दरिद्र होकर और बिस्तर, घर या वाहन तक न पाकर, वे इन्हें दूसरों से माँगते हैं; और उन्हें न पाकर, वे दूसरों की सम्पत्ति पर लोभी दृष्टि डालते हैं और केवल अपमान अर्जित करते हैं।



थोड़े-से मधु की ओर हाथ बढ़ाते हुए, एक पथिक उन भिनभिनाती मधुमक्खियों से घिर जाता है जो उसे संचित करती हैं, जबकि अन्य यात्री उसकी कठिनाई से पाई मिठास को उसके हाथों से छीनने को समीप आ जाते हैं (श्लोक 10-15)।

संसार के बन्धन और अनन्त यात्रा

यद्यपि उनका वैर और तीखा होता जाता है — एक-दूसरे के धन की लालसा से भड़का हुआ — फिर भी ये यात्री परस्पर विवाह-सम्बन्ध में बँध जाते हैं, और बारम्बार कष्ट, हानि और विपत्ति से नीचे खींचे जाते हैं। प्रत्येक पड़ाव पर वे अपने मृतकों को पीछे छोड़ देते हैं और प्रत्येक नवजात शिशु को आगे ले जाते हैं, और इस प्रकार दल आगे बढ़ता रहता है। उनमें से कोई भी उस यात्रा से आज तक नहीं लौटा; न ही कोई उस योग को ग्रहण करता है जो अकेला मार्ग के पार-छोर तक ले जाता है। यहाँ तक कि वे पराक्रमी वीर भी, जिन्होंने कभी आठों दिशाओं की रक्षा करने वाले महान् गजों को वश में किया था, अन्ततः रणभूमि में धूल चाटते हैं, पृथ्वी के लिए परस्पर घोर वैर करके — और उनमें से कोई भी उस लक्ष्य को नहीं पाता जिसे वह विरक्त इतनी सहजता से पा लेता है जिसने समस्त वैर त्याग दिया है।

बाघ का भय और खाई पर लटकती लता

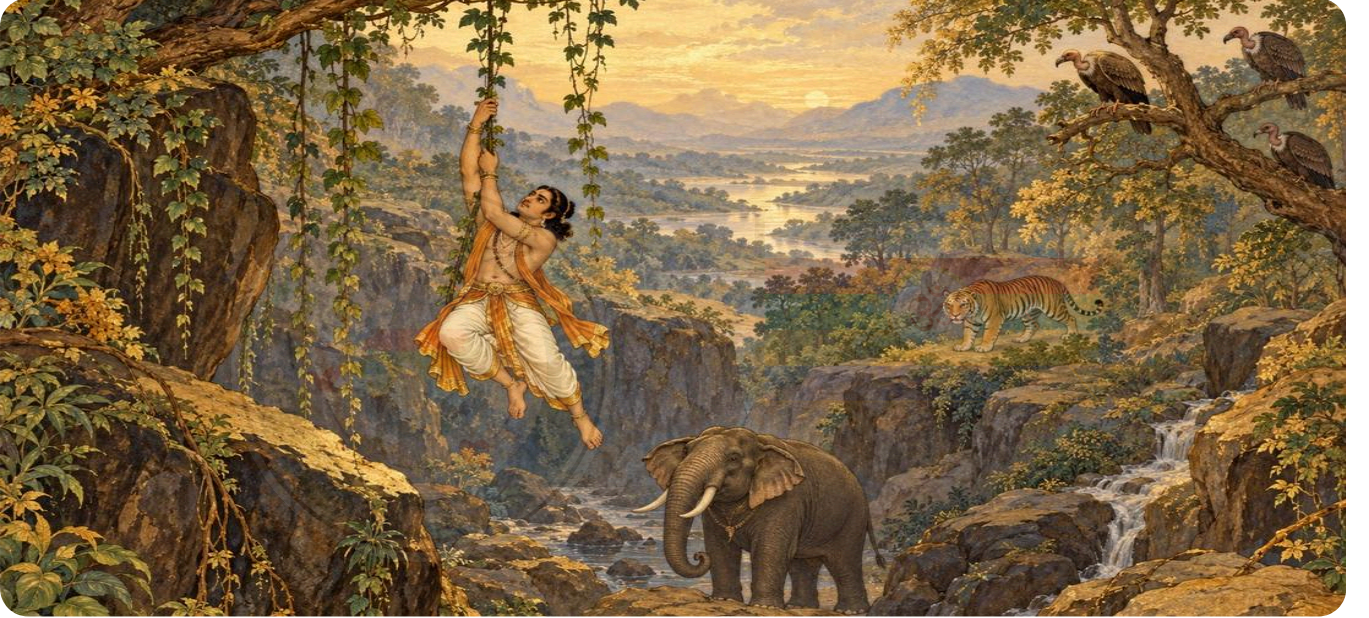
मार्ग में कहीं, ऋषि ने आगे कहा, एक पथिक लता की कोमल भुजाओं जैसी टहनियों को पकड़ लेता है, वहाँ बसे मधुर बोलते पक्षियों पर मोहित होकर, और उसी एक ठौर से बँध जाता है। और कभी-कभी, बाघों के भय से काँपता हुआ, वह बगुले, सारस और गिद्धों की संगति खोज लेता है।

प्रसज्जति क्वापि लताभुजाश्रय-
स्तदाश्रयाव्यक्तपदद्विजस्पृहः ।
क्वचित्कदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन्
सख्यं विधत्ते बककङ्कगृध्रैः ॥ १६ ॥

*prasajjati kvāpi latā-bhujāśrayas tad-āśrayāvyakta-pada-dviḥ-spṛhaḥ kvacit kadācid dhari-
cakratas trasan sakhyaṁ vidhatte baka-kaṅka-gṛdhraiḥ*

अर्थ: कहीं वह किसी लता की भुजा-सी शाखाओं से चिपक जाता है, उसमें आश्रय पाए मधुर कूजते पक्षियों की लालसा में; और कभी-कभी, बाघों से भयभीत होकर, वह बगुलों, सारसों और गिद्धों से मित्रता कर लेता है। (स्कन्ध 5, अध्याय 13, श्लोक 16)

इनसे छला जाकर, वह हंसों को खोजता है, और उनका आचरण न भाने पर वह बन्दरों में जा मिलता है; और वहाँ, इन्द्रियों की तृप्ति में लगे, प्रत्येक जोड़ा एक-दूसरे का मुख निहारने में इतना लीन हो जाता है कि वे अपनी शीघ्र आती मृत्यु तक को भूल जाते हैं। पुत्रों और पत्नी पर मुग्ध, अपने बन्धन की गाँठ ढीली करने में असमर्थ — और फिर, संयोगवश किसी खाई में गिरकर, कोई बिछड़ा एक लता पकड़ लेता है और लटका रह जाता है, नीचे खड़े हाथी से भयभीत। किसी प्रकार उस संकट से छूटकर, वह पुनः दल में मिल जाता है। और ऐसा ही चलता रहता है: अनादि माया द्वारा इस मार्ग पर लगाया गया कोई भी, आज तक जीवन के परम लक्ष्य को नहीं समझ पाया है।



संयोगवश किसी खाई में गिरा एक पथिक एक ही लटकती लता से चिपका रहता है और नीचे खड़े हाथी के ऊपर झूलता है, जबकि संसार के इस वन में बाघ घूमते हैं और गिद्ध शाखाओं से ताकते हैं (श्लोक 16-19)।

ज्ञान की तलवार

तब, एक मित्र की समस्त कोमलता के साथ, ऋषि ने सम्पूर्ण दृष्टान्त को अपने सामने बैठे व्यक्ति की ओर मोड़ा। तुम भी, हे रहूगण, उन्होंने कहा, इसी मार्ग पर लगाए गए हो। समस्त प्रकार की हिंसा त्याग दो; स्वयं को समस्त प्राणियों का मित्र बना लो; और सच्चे ज्ञान की तलवार उठाकर — जिसकी धार श्रीहरि की प्रेममयी सेवा से तीक्ष्ण हुई है — इन्द्रियों में अनासक्त हृदय से, इस अनन्त मार्ग के पार तट तक अपना रास्ता काटते हुए पहुँच जाओ।

रहूगण त्वमपि ह्यध्वनोऽस्य
सन्न्यस्तदण्डः कृतभूतमैत्रः ।
असज्जितात्मा हरिसेवया शितं
ज्ञानासिमादाय तरातिपारम् ॥ २० ॥

rahūgaṇa tvam api hy adhvano 'sya sannysta-daṇḍaḥ kṛta-bhūta-maitraḥ asaj-jitātmā hari-sevayā śitām jñānāsim ādāya tarāti-pāram

अर्थ: तुम भी, हे रहूगण, इस मार्ग पर लगाए गए हो। समस्त हिंसा त्यागकर, प्रत्येक प्राणी से मित्रता करके, और श्रीहरि की आराधना से तीक्ष्ण की गई ज्ञान की तलवार उठाकर, अनासक्त मन से, इस मार्ग के पार तट तक पहुँच जाओ। (स्कन्ध 5, अध्याय 13, श्लोक 20)

राजा के सन्देहों का समाधान

इन शब्दों पर राजा का हृदय उमड़ पड़ा। ओह, रहूगण पुकार उठे, यह मनुष्य-जन्म समस्त जन्मों में श्रेष्ठ है! स्वर्ग के ऊँचे-से-ऊँचे जन्म भी किस काम के, जहाँ आप जैसे उन्नत आत्माओं की धन्य संगति — जिनके मन भगवान् विष्णु की महिमा से पवित्र हुए हैं — प्रचुरता से नहीं मिलती? आश्चर्य क्या, उन्होंने कहा, कि इन्द्रियों से परे उस भगवान् के प्रति स्वच्छ प्रेम किसी ऐसे हृदय में जाग उठे जिसके पाप आपके चरणों की धूल पहले ही बहा ले गई है — क्योंकि देखिए, आपकी उपस्थिति की मात्र एक घड़ी ने वर्षों के कुतर्क से उपजे मेरे अविवेक को जड़ से उखाड़ दिया है।

न ह्यद्भुतं त्वच्चरणाब्जरेणुभि-
र्हतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला ।
मौहूर्तिकाद्यस्य समागमाच्च मे
दुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेकः ॥ २२ ॥

na hy adbhutam tvac-caraṇābja-reṇubhir hatāmhaso bhaktir adhokṣaje 'malā mauhūrtikād yasya samāgamāc ca me dustarka-mūlo 'pahato 'vivekaḥ

अर्थ: यह कोई आश्चर्य नहीं कि इन्द्रियातीत भगवान् के प्रति निर्मल भक्ति उसमें जागे जिसके पाप आपके चरण-कमलों की धूल से धुल गए हैं, जबकि आपकी संगति की एक ही घड़ी ने कुतर्क में मूलित मेरे अविवेक को जड़ से उखाड़ दिया है। (स्कन्ध 5, अध्याय 13, श्लोक 22)

ब्राह्मणों को नमस्कार, राजा पुकार उठे — वृद्धों और शिशुओं को, युवाओं और सबको — और प्रत्येक शासक उन पावन जनों से आशीर्वाद पाए जो समस्त सांसारिक बन्धन त्यागकर तपस्वियों के सादे वेश में पृथ्वी पर विचरते हैं।



अपना अभिमान पूर्णतया विलीन कर, राजा रूहण हाथ जोड़े और नवीन बने हृदय से ऋषि जड़ भरत के चरणों की वन्दना करते हैं, उनका प्रत्येक सन्देह भगवान् के एक सच्चे भक्त की एक घड़ी की संगति से धुल गया (श्लोक 20-26)।

जिस अपमान को उन्होंने सहा था — राजा की पालकी को भार-वाहक पशु के समान ढोकर — उसकी कोई गाँठ जड़ भरत के हृदय में नहीं जमी। श्रीशुक इसका कारण स्पष्ट करते हैं: दुर्व्यवहार होने पर भी महान् आत्मा की इन्द्रियों में जो हलचल उठती है वह शीघ्र ही शान्त हो जाती है, क्योंकि सिद्ध पुरुष स्वभाव से ही सहनशील, करुणामय और समस्त देहधारियों के हितैषी होते हैं, किसी को मित्र या शत्रु नहीं मानते (श्लोक 24)। यही निःशर्त करुणा — जो बदले में कुछ नहीं माँगती और जिसके लिए पहले से किसी सद्ब्यवहार की आवश्यकता नहीं — उन्हें रूहण को उसी क्षण क्षमा करने में समर्थ बनाती है जब राजा उनके चरणों में क्षमा माँगते हैं; और यही कारण है, किसी बाह्य शक्ति से अधिक, कि सिद्ध पुरुष की कृपा, एक बार मिल जाने पर, एक ही घड़ी में वह मिटा सकती है जिसे स्वयं का जीवन-भर का प्रयास नहीं मिटा सकता। और इस प्रकार, उसी अपार करुणा से, अपने अपमान करने वाले को ही आत्मा का सच्चा स्वरूप सिखाकर, वह ब्रह्मर्षि के तेजस्वी पुत्र पृथ्वी पर पुनः विचरण करने लगे, चारों ओर से परिपूर्ण समुद्र के समान शान्त, अपनी इन्द्रियों की तरंगें पूर्णतया विश्रान्त।

सौवीर के स्वामी रूहण ने उस पुण्यात्मा से परम आत्मा का सच्चा स्वरूप ग्रहण करके, इस अज्ञानपूर्ण धारणा को सदा के लिए त्याग दिया कि वे देह हैं — और यहीं श्रीशुक परीक्षित के लिए सीधे शिक्षा निकालते हैं।

सौवीरपतिरपि सुजनसमवगतपरमात्मसतत्त्व आत्मन्यविद्याध्यारोपितां च देहात्ममतिं विससर्ज । एवं हि नृप भगवदाश्रिताश्रितानुभावः ॥

२५ ॥

sauvīra-patir api sujana-samavagata-paramātmā-satattva ātmany avidyādhyañropitāñ ca dehātma-matiñ visasarja; evaṃ hi nṛpa bhagavad-āśritāśritānubhāvaḥ

अर्थ: सौवीर के स्वामी ने भी उस पुण्यात्मा से परम आत्मा का सच्चा स्वरूप जानकर, इस अज्ञान-जनित धारणा को त्याग दिया कि वे देह हैं — हे राजन्, ऐसा ही सौभाग्य उसे मिलता है जो भगवान् के भक्त की शरण की शरण ग्रहण करता है। (स्कन्ध 5, अध्याय 13, श्लोक 25)

तब राजा परीक्षित ने, इसके प्रत्येक छिपे अर्थ को खुलवाने की इच्छा से, शुकदेव से प्रार्थना की कि वे उस महान् वन-दृष्टान्त के भीतरी भाव को क्रमशः खोलकर बताएँ।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

संसार एक वन है, और लाभ की खोज हमें उसके खोए हुए यात्री बना देती है। केवल अर्जन — धन, सुख, नाम — में लगा जीव सांसारिक अस्तित्व के उलझे वन में प्रवेश करता है और उसमें कहीं कोई स्थायी शान्ति नहीं पाता।

हमारी इन्द्रियाँ डाकू हैं, और भटका हुआ मन एक अयोग्य नायक है। जो छह डाकू दल को लूटते हैं वे इन्द्रियाँ हैं; जो अयोग्य नायक उन्हें भटकाता है वह असंयमित मन है। न ज्ञान से रक्षित, न भक्ति से, यात्री अपने बटोरे सब कुछ से लूट लिया जाता है।

संसार के सुख मृगतृष्णा और मायावी नगर हैं। आकाश का चमकता नगर, जल-रहित धाराएँ, किसी काल्पनिक नगर में एक घड़ी का आनन्द — प्रत्येक सांसारिक सुख पूर्णता का वचन देता है और पास पहुँचते ही विलीन हो जाता है। इनके पीछे दौड़ना उस जल के पीछे दौड़ना है जो कभी था ही नहीं।

भक्ति से तीक्ष्ण की गई ज्ञान की तलवार जीव को मुक्त कर देती है। ऋषि का उपाय निराशा नहीं, कर्म है: समस्त हिंसा त्यागो, प्रत्येक प्राणी से मित्रता करो, श्रीहरि की आराधना करो, और उस प्रेममयी सेवा से ज्ञान की धार को तब तक तीक्ष्ण करते रहो जब तक वह प्रत्येक बन्धन काट न दे। यही अकेला मार्ग के पार-छोर तक ले जाता है।

एक सच्चे भक्त की एक घड़ी की संगति जीवन भर के मोह को मिटा सकती है। सन्त के चरणों की धूल पाप धो देती है, और पावन संगति की एक घड़ी वर्षों के अज्ञान को जड़ से उखाड़ देती है, जैसा स्वयं रूहण ने अनुभव किया।

शुद्ध भक्त की करुणा निःशर्त होती है, और यही उसकी शक्ति है। सिद्ध आत्मा स्वभाव से ही सहनशील, करुणामय और समस्त प्राणियों की मित्र होती है, इसलिए क्षमा करना उसे कुछ भी नहीं खोता — उसे भी नहीं जिसने उसका अपराध किया हो — इसीलिए भगवान् के भक्त की शरण, चाहे कितनी ही विनम्रता से ली गई हो, जीवन भर की देह-बुद्धि को घोलने जितनी सामर्थ्यवान् कृपा साथ लाती है।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस वन में कुछ ऐसा है जिसे हम तुरन्त पहचान लेते हैं, क्योंकि हम उसमें चले हैं। हमने भी उस चमकते नगर के पीछे दौड़ लगाई है जो पास आते ही लुप्त हो गया; हमने भी थोड़े मधु के लिए हाथ बढ़ाया और डसे गए, और वह थोड़ा भी हमारे हाथों से छीन लिया गया; हम भी किसी लटकती आराम की लता से चिपके रहे जबकि नीचे की भूमि खिसकती गई। जड़ भरत वन का यह चित्र हमें डराने के लिए नहीं, अपितु जगाने के लिए बनाते हैं — जैसे कोई मित्र किसी स्वप्न देखते हुए को कोमलता से कन्धे से हिला दे। और देखिए उनका दृष्टान्त कहाँ समाप्त होता है: अन्धकार में नहीं, अपितु एक तलवार के प्रकाश में, और फिर एक सन्त के चरणों की धूल में। जीव सदा भटकने को अभिशप्त नहीं है। पार जाने का एक मार्ग है, और वह हमारे सोचे से अधिक निकट है — अपने कलहों को त्यागने में, प्रत्येक प्राणी से मित्रता करने में, और अपने प्रेम को भगवान् की ओर मोड़ने में जब तक वह इतना तीक्ष्ण न हो जाए कि प्रत्येक गाँठ काट दे। रूहण एक अभिमानी राजा था, उसी वन में खोया जिसमें हम हैं, और पावन संगति की एक ईमानदार घड़ी ने उसे मुक्त कर दिया। वही कृपा प्रत्येक खोजी हृदय की प्रतीक्षा करती है।

एक दैनिक भाक्ते-साधना

आज, एक ऐसे “मायावी नगर” को चुनिए जिसके पीछे आप दौड़ते रहे हैं — कोई वस्तु, प्रशंसा या सुख जिसके विषय में आपने स्वयं से कहा है कि वह अन्ततः आपको सन्तुष्ट कर देगा — और उसे कोमलता से भगवान् के सम्मुख रख दीजिए, यह स्वीकार करते हुए कि जिस शान्ति को आप खोजते हैं वह उसमें कभी छिपी ही नहीं थी। फिर उसके स्थान पर, ज्ञान की तलवार का एक छोटा-सा वार उठाइए: किसी से मेल कर लीजिए, किसी छोटे प्राणी को बचाइए, या किसी ऐसे जीव पर दया कीजिए जिसकी आप सामान्यतः उपेक्षा कर देते, इसे श्रीहरि की आराधना के रूप में करते हुए। ऐसा करते हुए मन ही मन कहिए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” और यदि सम्भव हो, तो आज कुछ क्षण भगवान् के किसी सच्चे भक्त की संगति या वाणी में बिताइए — क्योंकि जैसा जड़ भरत वचन देते हैं, ऐसी संगति की एक घड़ी वर्षों के मोह को जड़ से उखाड़ना आरम्भ कर सकती है।

उपसंहार

पंचम स्कन्ध का तेरहवाँ अध्याय हमें जड़ भरत का सांसारिक अस्तित्व-रूपी वन का महान् दृष्टान्त देता है। जीव, वे सिखाते हैं, एक वणिक है जिसे माया एक ऐसे मार्ग पर लाभ की खोज में लगा देती है जिसे पार करना लगभग असम्भव है; संसार के उलझे वन में प्रवेश कर, वह छह इन्द्रियों से लूटा जाता है, मृगतृष्णा और मायावी नगरों से छला जाता है, मिठास की ओर हाथ बढ़ाने पर डसा जाता है, और पशुओं तथा अग्नि से भयभीत होता है — समस्त देहधारी जीवों के दल के साथ आगे बढ़ता हुआ, जिनमें से कोई भी न कभी लौटता है न मात्र प्रयास से लक्ष्य पाता है। तब ऋषि दृष्टान्त को आशा में उठाते हैं: ज्ञान की तलवार उठाओ, जिसकी धार श्रीहरि की प्रेममयी सेवा से तीक्ष्ण है, समस्त हिंसा त्यागो, प्रत्येक प्राणी से मित्रता करो, और पार तट तक पहुँच जाओ। ये शब्द राजा रूहण के हृदय को बींध देते हैं; उसका अज्ञान जड़ से उखड़ जाता है, देह होने का उसका मिथ्या भाव मिट जाता है, और वह ऋषि के चरणों की वन्दना करता है — यह प्रमाण कि भगवान् के भक्त की शरण की शरण भी किसी जीव को पूर्णतः मुक्त करने जितनी कृपा रखती है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, *श्रीमद्भागवत महापुराण*, पंचम स्कन्ध, त्रयोदश अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-13-the-forest-of-worldly-existence-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

